दूसरी नज़र

■ पी चिदंबरम

सरकार के भीतर सरकार

हर सरकार उस वक्त सकते में पड़ जाती है, जब कोई गंभीर संकट उसके समक्ष खड़ा हो जाता है। गलती किसी की हो, लेकिन जिम्मेदारी कोई नहीं लेगा। आखिरकार, मामला सरकार के प्रमुख- मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री के पास आकर रुक जाता है। हालांकि गहराई से जांच करने पर पता चलेगा कि वह कोई पहली/ पहला व्यक्ति नहीं है, जिसे जिम्मेदार ठहराया जाए, बल्कि शासन की संसदीय प्रणाली अलग तरह से चलती है।

क्रूर मौतें

बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में दिमागी बुखार से अब तक हुई एक सौ सत्रह मौतों का जिक्र प्रासंगिक है। केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय के प्रबंधन सूचना तंत्र के अनुसार जिले में सभी एक सौ तीन प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों और एकमात्र सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र को रेटिंग में पांच में से शून्य मिला था, क्योंकि इनमें से कोई भी केंद्र मूल्यांकन के लिए आवश्यक जरूरतें (जैसे चिकित्साधिकारी, नर्स/ दाई) पूरी नहीं करता था। मुजफ्फरपुर में श्रीकृष्ण मेडिकल कॉलेज अस्पताल का शिशु रोग विभाग, जहां पीड़ित बच्चों का इलाज चल रहा है, आइसीयू के लिए निर्धारित मानकों को पूरा नहीं करता है। इन तथ्यों को देखते हुए किसे ये जिम्मेदारी लेनी चाहिए? कोई नहीं लेगा, इसलिए हम छोटे-से स्वादिष्ट फल लीची को इसके लिए दोषी ठहरा देंगे! डॉक्टरों ने कहा कि जिन बच्चों ने रात में खाना नहीं खाया था, उन्हीं पर लीची खाने का असर पड़ा है। और भगवान के लिए सोचिए, रात में उन्होंने खाना क्यों नहीं खाया? क्योंकि वे गरीब हैं और उन्हें खाना मिलता ही नहीं है। क्या इससे ज्यादा विध्वंसकारी और दर्दनाक कुछ हो सकता है? (2008 से 2014 के दौरान दिमागी बुखार से छह हजार मौतें हुई थीं।)

कुछ दिन पहले गुजरात के वडोदरा शहर में सेप्टिक टैंक खाली करने के दौरान सात सफाई कर्मचारियों की मौत हो गई। ऐसा हादसा कोई पहली बार नहीं हुआ था और दुख की बात यह है कि ऐसा आखिरी भी नहीं होगा। सेप्टिक टैंक की सफाई कोई रॉकेट विज्ञान नहीं है, इस काम के लिए मशीनें हैं और केरल में एक स्टार्ट-अप ने इसका भारतीय संस्करण (बंदीकूट) तैयार कर दिया है। जब सीवर और सेप्टिक टैंकों की सफाई के लिए सफाई कर्मियों को उतारना जरूरी ही हो, तो उन्हें विशेष कपड़ों, मास्क और आक्सीजन सिलेंडरों की जरूरत होती है। इनमें से एक भी उपकरण ऐसा नहीं है जिसे वडोदरा जैसा नगर निगम, जो गुजरात के सबसे अमीर निगमों में से है, पैसे की वजह से खरीद न पाए। फिर भी सात गरीब लोगों को मर जाने दिया गया। (2011 से 2018 के बीच भारत के सभी राज्यों में एक सौ चौदह सफाई कर्मचारी इसी तरह मारे गए।)

हैरानी भरी लापरवाही

स्तब्ध कर देने वाले आंकड़े और भी हैं। दिल्ली में रोजाना औसतन चार व्यक्ति सड़क हादसे में मारे जाते हैं। आप सोच सकते हैं कि कल फिर चार मारे जाएंगे, फिर अगले दिन चार और इसी तरह हर दिन अकेले दिल्ली शहर में रोजाना चार लोग सड़क हादसों का शिकार होते रहेंगे। दुनिया भर में पूरे साल में जितने लोग हवाई दुर्घटनाओं में मारे जाते हैं वह तो इसका एक हिस्सा भर हैं! क्यों हमने हवाई यात्रा के लिए इतने कड़े कानून बनाए हैं और सड़क यात्रा के लिए इतने कमजोर कानून? (2011 से 2017 के बीच दिल्ली में सड़क हादसों में बारह हजार सात सौ चौबीस लोग मारे गए थे।)

क्या आप कभी दिल्ली में बारापुला पुल से होकर गुजरे हैं, जिस पर दिल्ली सरकार का पीडब्लूडी विभाग 'गर्व' करता है और जिसे बनने में कई साल लग गए? यह पुल औसत दर्जे का है, डिजाइन भी इसका औसत ही है, इस पर यात्रा भी औसत ही है, लेकिन इसके निर्माण की गुणवत्ता बहुत ही खराब है। इस पुल पर बनी सड़क के किनारों की दीवारों नजर भर डाल लें, टूटी-उखड़ी हुई मिलेंगी, इसकी ऊंचाई में कोई समानता नहीं है, स्लैब तक नहीं जुड़े हैं, बहुत ही भद्दे तरीके से इन पर प्लास्टर और पेंट कर दिया गया है, और पूरी तरह से बदसूरत। फिर भी गुणवत्ता परीक्षण में इसे पास कर दिया गया, ठेकेदार को भुगतान हो गया (संभवत ससम्मान) और 2010 में इस पुल का उद्घाटन हो गया। बहुत ज्यादा वक्त नहीं लगेगा जब इसे मरम्मत के लिए बंद कर दिया जाएगा।

इरादे और अमल

इनमें से कोई भी मामला- और दूसरे मामलों के बारे में भी आप सोच सकते हैं- ऐसा नहीं था, जो नीतिगत नाकामी का शिकार हुआ हो। किसी भी सरकार की नीति स्वास्थ्य सुविधाओं और अस्पतालों का निर्माण करने और उन्हें स्टाफ तथा अन्य सुविधाओं से युक्त बनाने के लिए है, सफाईकर्मियों द्वारा सीवर साफ करने की प्रथा को खत्म करने के लिए है, यातायात नियमों को लागू करने और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए है, गुणवत्ता पूर्ण निर्माण कार्य के लिए है और शहरों-नगरों को सुंदर बनाने के लिए है, आदि। विधायिका या कार्यपालिका (उदाहरण के लिए मंत्री) नीति बनाते हैं और स्वाभाविक तौर पर चाहते हैं कि उस नीति पर अमल अच्छे से हो। लेकिन इरादे और अमल में भारी अंतर होता है। क्यों? हमें यह कहते हुए हिचकिचाहट होती है, लेकिन इसे कहा जाना चाहिए- सरकार के भीतर एक और सरकार होती है, और इस दूसरी वाली सरकार ने पहली वाली सरकार को उसी तरह निराश किया है जैसे आमजन को, खासतौर से भारत के मामले में तो।

मैं दो परस्पर विरोधी उदाहरणों के साथ बात को बताता हूं। नोटबंदी एक बड़ी नीतिगत गलती थी, जिन मंत्रियों ने इस नीति की कल्पना की और इसे अंजाम दिया, पहली वाली सरकार को इसकी जिम्मेदारी लेनी चाहिए। दूसरी ओर, जीएसटी एक अच्छी नीति थी। अगर नोटबंदी की तरह ही यह भी परेशानी का बड़ा कारण बनी तो इसकी दोषी दूसरी वाली सरकार है।

स्वच्छ भारत एक अच्छी नीति है। लेकिन खुले में शौच मुक्ति के राज्यों और गांवों से जो फर्जी आंकड़े आए, वह दूसरी वाली सरकार का किया-धरा है। उज्ज्वला अच्छी नीति है, लेकिन साल भर में तीन सिलेंडर बदलने की नाकामी दूसरी वाली सरकार की है।

जब हम वोट देते हैं तो हम पहली वाली सरकार को वोट देते हैं। दूसरी वाली सरकार पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं होता है। उसके चयन, भर्ती, प्रशिक्षण, मूल्यांकन, नियुक्ति, तैनाती या पदोन्नति के बारे में हमें कुछ नहीं कह सकते। इसे चलते रहने देना संभव नहीं। हमें दूसरी वाली सरकार को नए सिरे से तैयार करना होगा। जैसे हम पहली वाली सरकार और इसके कर्ताधर्ताओं को हर पांच साल में ईनाम या सजा देते हैं, वैसे ही हमें दूसरी सरकार वालों को हर पांच साल या और जल्द ईनाम या सजा देने का उपाय करना होगा।

असल चुनौती, जिसका आज हम सामना कर रहे हैं, नीति बनाने की नहीं है। यह नीति को दक्षतापूर्ण, आर्थिक रूप से कामयाब बनाने और उत्कृष्ट तरीके से लागू करने की है।

शिक्षा की आधार-त्रयी

जगमोहन सिंह राजपूत

यह सामान्य समझ है कि संवेदनशील आयु में अध्यापक ही बच्चे के व्यक्तिव को दिशा देते हैं। वे ही अनगढ़ बालक यानी व्यक्ति को 'व्यक्तित्व' में बदल देते हैं। ऐसा तभी संभव होगा जब अध्यापक में वे सभी ज्ञान, गुण और कौशल विद्यमान हों, जो वह बच्चे में प्रस्फुटित होते देखना चाहता है। उसे बच्चे के मनोविज्ञान, उसकी सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, परंपरा तथा पारिवारिक स्थिति से पूर्णरूपेण परिचित होना होगा। माना जाता है कि जन्म के समय बच्चा अनेक ईश्वरीय उपहार लेकर आता है, जिनमें कल्पना की उड़ान, विचारों की शक्ति, जिज्ञासा की प्रवृत्ति तथा सर्जनात्मकता का कौशल सम्मिलित होता है। भारत की प्राचीन संस्कृति में प्रारंभ से ही यह भी स्पष्ट कर दिया जाता रहा है कि बच्चे के जन्म लेते ही तीन ऋण भी उसके साथ जुड़ जाते हैं: पितृ ऋण, ऋषि ऋण, और दैव ऋण! इसका तात्पर्य परिवार तथा समाज के प्रति, ज्ञान देने वालों के प्रति तथा प्रकृति के प्रति कर्तव्य भाव को प्रारंभ से ही जागृत करना था। इसी सोच से भारत में कर्तव्यबोधक समाज की संरचना आगे बढ़ी।

शिक्षा बच्चों को यह तैयारी कराती है कि जो वरदान लेकर प्रत्येक व्यक्ति पृथ्वी पर आता है, उनका उपयोग उसे ऋण चुकाने में कैसे करना है! इन दोनों के समन्वय- यानी ईश्वरीय वरदानों का ऋण उतारने में उपयोग- से सामान्यतया जीवन का दर्शन, उद्देश्य, लक्ष्य, कार्य-पद्धति, उपलब्धियां निर्धारित होती हैं और जीवन यात्रा आगे बढ़ती है।

हर सभ्यता की अपनी विशिष्ट ज्ञान परंपरा विकसित होती है, आगे बढ़ती और वही अपनी गतिशीलता से लोगों और समाज को गतिशील बनाए रखती है। वही जीवन को समझने और संतोषप्रद ढंग से जीने के लिए प्रेरित करती रहती है। इसके लिए विद्या, गुरु, शिक्षा, अध्यापक, परिवार, समाज को अपने अपने निर्धारित उत्तरदायित्व निभाने पड़ते हैं। प्राचीन भारत में ज्ञानार्जन परंपरा को अग्रेषित करने वाले साधक और चिंतक, मनुष्य और प्रकृति की संवेदनशील पारस्परिकता के महत्त्व को समझने के लिए घोर साधना और मनन-चिंतन करते थे। चूंकि अपनी आवश्यकताओं का निर्धारण करना और उसकी पूर्ति के लिए प्रकृति के संसाधनों का उचित उपयोग करना मनुष्य का ही कर्तव्य बनता था, इसलिए यह उसी का उत्तरदायित्व था कि उसकी पीढ़ियां दैव ऋण- मानव और प्रकृति के संबंध- के महत्त्व को समझें और तदनुसार अपने आचरण का निर्धारण करें। इसका अर्थ प्रकृति के प्रति आदर तथा सम्मान का भाव जगाना था। विश्व की कुछ सभ्यताओं में दर्शन अलग था: प्रकृति के सारे संसाधनों को मनुष्य के सुख-भोग के लिए निर्मित किया गया है, इसलिए इसका भरपूर उपभोग करो!

इस प्रकार सभ्यताओं के विकास में दो प्रवृत्तियां पैदा हुईं: एक तरफ अपरिग्रह, दूसरी ओर अपरिमित उपभोग और संचयन! परिणाम स्वरूप विश्व आज जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग जैसी समयाओं से जूझ रहा है। ऐसा तब हो रहा है जब मनुष्य की ज्ञान विज्ञान और प्रकृति के रहस्यों की समझ में अप्रत्याशित बढ़ोतरी हुई है। शिक्षा का अभूतपूर्व प्रसार हुआ है, मगर वह मनुष्य की प्रकृति के साथ पारस्परिकता की संवेदनशील समझ उत्पन्न नहीं कर सकी है। सेंसेक्स और निफ्टी बढ़ते हैं, कितने ही चेहरों पर चमक आ जाती है। मगर ऐसे भी करोड़ों लोग हैं, जो भूखे सोते हैं। वे अंतिम पंक्ति में खड़े लोग हैं, जो पीने के पानी के लिए मोहताज हैं। आज वैज्ञानिक यह गणना करने लगे हैं कि अगर सब कुछ ऐसा ही चलता रहा तो यह पृथ्वी कितने वर्ष और जीवित रहेगी! वैश्वीकरण का युग सभ्यताओं के सम्मिश्रण का समय है, चमक-दमक से प्रभावित होने का समय है। इसलिए भारत में भी पारिवारिक संबंधों, अपनी संस्कृति और अपरिग्रह को भूलने वाले लगातार तेजी से बढ़ रहे हैं।

इस आत्मघाती प्रवाह के ठहराव और दिशा परिवर्तन की संभावना का स्रोत केवल एक है: अध्यापक! इस परिदृश्य के गहन विश्लेषण के आधार पर टिकी शिक्षा नीति ही कारगर हो सकेगी?

मनुष्य अधिकतर समस्याएं स्वयं पैदा करता है। वह समाधान भी निकाल लेता है। दैव ऋण और पितृ ऋण से जुड़े कार्य-क्षेत्रों में जो कुछ किया जा सकता है वह ऋषि ऋण यानी ज्ञान-प्राप्त कर और उसमें संवर्धन कर मिली क्षमता से निर्धारित होता है। इसका सीधा प्रयोजन यह है कि शिक्षा का संचालन हर स्तर पर कर्मठ, सक्षम, संवेदनशील और अनुकरणीय व्यक्तित्व वाले व्यक्ति ही करें। वर्तमान व्यवस्था में अधिकार और निर्देशन नौकरशाही के पास है, सारी विफलताओं का दारोमदार अध्यापक का ही मान लिया जाता है। यह तब संभव था जब व्यवस्था गुरुकुल जैसी प्रणाली में संचालित होती थी। कुलगुरु किसी दबाव में कार्य नहीं करता था। अगर कोई दबाव था तो वह था नैतिकता के दायरे में रह कर सतत अध्ययनशील बने रहना और नए ज्ञान की खोज में आलस न करना, ज्ञान के सर्जन और वितरण में कोई कोताही न करना! गुरु परंपरा में किसी भी प्रकार के आदेशों का पालन नहीं करना पड़ता था। संसाधनों की चिंता नहीं करनी पड़ती थी। आज भी ऐसे अध्यापक हैं, जो सहृदय, संवेदनशील, कर्मठ और सत्य-शोधक माने जाते हैं। मगर सरकारी तंत्र और नौकरशाही में इन गुणों का महत्त्व शायद कभी अपवाद स्वरूप ही समर्थन और प्रोत्साहन पाता हो! ऐसे अध्यापक अनुकरणीय माने जाने चाहिए, ऐसों को ढूंढ़ा जाना चाहिए, उन्हें हर स्तर पर नेतृत्व संभालने के लिए तैयार किया जाना चाहिए।

शिक्षा

> प्रबोधन, नायकत्व तथा सामंजस्य वे तीन तत्त्व हैं, जो अध्यापक और विद्यार्थी दोनों को परिभाषित करते हैं, इसलिए यही शिक्षा नीति का मूल आधार बनने चाहिए।

शिक्षा दर्शन के अध्ययन और आध्यात्मिकता के प्रबोधन के क्षेत्र में जीवन लगाने वाले आचार्य किरीट जोशी ने एक वैकल्पिक संकल्पना प्रस्तुत की थी। शिक्षक जिन गुणों को विद्यार्थी में विकसित करना चाहता है, पहले वह उन्हें स्वयं समझे, वे उसके अपने व्यक्तित्व में कितने उभरे हैं, यह जाने और उसके बाद विद्यार्थी को उन्हें खोजने और ग्रहण करने में सहायक बने। ये तीन तत्व हैं: 'इल्युमिनेशन', 'हीरोइज्म' और 'हारमनी'। इन्हें आधार-त्रय माना जा सकता है। इनमें से पहले- प्रदीप्ति/ प्रबोधन; यानी 'इल्यूमिनेशन'- के अंतर्गत जीवन के लक्ष्य, महत्त्व और मूल्यों की समझ का विकसित होना, प्रेरणास्पद कार्यों की ओर अग्रसर होना, जीवन दर्शन का विस्तार और उसकी सार्थकता की पहचान, सर्जनात्मकता और सेवा के आनंद की अनुभूति, जैसे महत्त्वपूर्ण अवयव सम्मिलित होते हैं। जैसे जैसे ज्ञान बढ़ता है, अतिरिक्त प्रबोधन बुद्धि तत्त्व को प्रज्वलित करता है। इसकी आभा में जीवन के हर क्षेत्र में वैचारिकता और सर्जनात्मकता के नए द्वार खुलते जाते हैं, सेवा और सद्भाव अतिरिक्त आनंद प्रदायक बन जाते हैं।

इसके साथ जब दूसरा तत्त्व 'हीरोइज्म'- ऊर्जावान वीरोचित व्यक्तित्व- जुड़ जाता है तब लक्ष्य प्राप्ति में विश्वास बढ़ता जाता है। उर्जावान व्यक्ति जब बुद्धितत्त्व से निर्देशित होता है, सेवा के महत्त्व से प्रेरणा लेता है, सम्यक कर्तव्य निर्वाह में संलग्न रहना चाहता है, तभी वह पूरी लगन के साथ लक्ष्य को संपूर्णता में प्राप्त करता है। ऐसा व्यक्ति अधिक से अधिक कार्य करना चाहता है, उसे इसमें भरपूर आनंद और संतुष्टि प्राप्त होती है। ऐसा वातावरण बन जाता है, जिसकी संकल्पना शिक्षा शास्त्र से संबंधित हर पुस्तक और प्रतिवेदन में की जाती रही है: बच्चे की संपूर्ण प्रतिभा विकास के लिए उन्हें आनंददायक, संवेदनशील तथा अपनत्व भरा वातावरण मिलना ही चाहिए।

प्रबोधित और उर्जावान व्यक्ति ही समाज और प्रकृति के साथ तीसरा तत्त्व- समन्वय- 'हारमनी'- स्थापित करने में सक्षम हो जाता है। प्रबुद्ध उर्जावान व्यक्ति समन्वय की प्रक्रिया में भी अपने ज्ञान तथा कौशल के स्तर को लगातार बढ़ाता रहता है और यह बौद्धिक प्रखरता उसकी लगनशीलता, त्याग, कर्मठता, तथा परिष्करण से संभव होती है। प्रबोधन, नायकत्व तथा सामंजस्य वे तीन तत्त्व हैं, जो अध्यापक और विद्यार्थी दोनों को परिभाषित करते हैं, इसलिए यही शिक्षा नीति का मूल आधार बनने चाहिए।

बीमार स्वास्थ्य सेवाएं

वक़्त की नब्ज़

■ तवलीन सिंह

बच्चों को मरते देखना हमेशा कठिन होता है। जब मरते हैं लापरवाही के कारण तो कठिनाई बढ़ जाती है सौ गुना। मुजफ्फरपुर के उस अस्पताल में जो एक सौ सत्तर बच्चे मरे हैं पिछले हफ्ते वे जिंदा होते, अगर बिहार सरकार ने अपनी स्वास्थ्य सेवाओं को लेकर इतनी लापरवाही न बरती होती। जिस श्रीकृष्ण मेडिकल कॉलेज के अस्पताल में बच्चे मरे हैं, उसमें पीने के पानी तक की सुविधा नहीं थी। ऊपर से गंदगी इतनी थी अस्पताल के गलियारों और बरामदों में कि इलाज का नाम लेना ही ऐसी जगह में पाप होगा। कैसे बचते बच्चे? भारत के बच्चों की जानें वैसे भी इतनी सस्ती हैं कि विशेषज्ञों का अनुमान है कि अपने देश में इक्कीस बच्चे हर मिनट मरते हैं। हर वर्ष एक हजार में से इकसठ बच्चे ऐसे हैं, जो अपने पांचवें जन्मदिन तक जीवित नहीं रह पाते और जो मरते हैं ऐसी बीमारियों के कारण जो लाइलाज नहीं हैं।

ऐसा नहीं कि मुजफ्फरपुर के उस अस्पताल के डॉक्टरों ने विशेष तौर पर लापरवाही दिखाई। ऐसा भी नहीं कि जिस गंदगी को हमने उस अस्पताल में देखा वह खास थी। यही हाल आपको दिखेगा सरकारी अस्पतालों में बिहार और उत्तर प्रदेश में हर जगह। मेरी आदत है कि जब भी किसी गांव या छोटे शहर में पहुंचती हूं, तो जरूर देखने जाती हूं वहां के स्कूल, अस्पताल या स्वास्थ्य केंद्र। अक्सर इनको देख कर शर्म आती है। उत्तर प्रदेश में मैंने ऐसे अस्पताल देखे हैं, जिनकी दीवारें और छतें गिर चुकी हैं। उनमें न मरीज होते हैं न डॉक्टर। ये वे अस्पताल हैं, जिसके निर्माण से विधायक, सरपंच और सांसदों ने पैसा बनाए हैं। जिन अस्पतालों में इलाज हो रहा होता है, वहां इतनी लापरवाही से होता है कि गरीब लोग भी निजी अस्पतालों में जाने की कोशिश करते हैं।

निजी तौर पर मुझे सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं को इतना बेहाल देख कर तकलीफ इसलिए होती है क्योंकि चालीस वर्ष पहले जब मैंने पत्रकारिता में पहला कदम रखा, तो मैंने दिल्ली के अस्पतालों पर कई लेख लिखे थे। इमरजेंसी का दौर था। राजनीतिक चीजों पर लिखने की इजाजत नहीं थी, सो हम लोग इस किस्म के मुद्दे उठाने की कोशिश करते थे, जो सामाजिक लगते थे ऊपर से, लेकिन अंदर से राजनीतिक हुआ करते थे। इन लेखों को लिखने के लिए मैंने दिल्ली के तकरीबन हर सरकारी अस्पताल में इमरजेंसी कक्ष में कई घंटे बिताए और करीब से देखा उनका हाल। अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि मुजफ्फरपुर के उस अस्पताल को देख कर ऐसा लगा मुझे जैसे चालीस सालों में हमारी स्वास्थ्य सेवाओं में कोई सुधार नहीं हुआ है।

> उम्मीद करते हैं कि इस बार प्रधानमंत्री नहीं भुलाएंगे उन मासूम बच्चों को, जो मुजफ्फरपुर के उस अस्पताल में मरे हैं। इस बार परिवर्तन यह देखने को मिला कि गरीब माता-पिता भी समझ गए हैं कि उनका अधिकार है सरकार से बेहतर सेवाएं मांगना।

न समस्याएं बदली हैं और न ही वे अधिकारी और राजनेता, जिनको हमने जिम्मेदारी दी है इस देश के लोगों को सेहतमंद रखने की। फर्क आया है अगर तो सिर्फ यह कि अब निजी टीवी चैनल खुल गए हैं कई सारे और जब बच्चे मरने लगते हैं किसी अस्पताल में तो टीवी पत्रकार पहुंच जाते हैं राजनेताओं से पहले। दुनिया को जानकारी मिल जाती है उस अस्पताल के हाल की। बाद में शर्मिंदा होकर पहुंचते हैं आला अधिकारी और राजनेता। बड़े-बड़े वादे करने के बाद अपने काफिलों में रवाना हो जाते हैं। इस बार भी ऐसा ही हुआ और होता ही रहेगा। इस बार लेकिन अगर प्रधानमंत्री चाहते हैं तो उसी व्यापक पैमाने पर परिवर्तन ला सकते हैं देश की स्वास्थ्य सेवाओं में, जिस तरह स्वच्छ भारत आंदोलन शुरू करके लाए हैं पिछले पांच वर्षों में।

प्रधानमंत्री अक्सर स्वास्थ्य सेवाओं में दखल नहीं देते हैं, क्योंकि यह काम मुख्यमंत्रियों के जिम्मे आता है। इस बार लेकिन मोदी दखल दे सकते हैं, इसलिए कि देश के तकरीबन सारे बड़े राज्यों में अब मुख्यमंत्री उन्हीं के हैं। अपने पहले कार्यकाल में भी ऐसा ही था, लेकिन शायद इस तरफ ध्यान ही नहीं गया प्रधानमंत्री का, क्योंकि इतना कुछ और था सुधारने के लिए। इस बार अगर सुधार लाना चाहते हैं, तो शुरुआत उनको करनी चाहिए, राजनेताओं और सरकारी अफसरों के लिए निजी अस्पतालों में इलाज करवाने पर पूरी तरह प्रतिबंध लगा कर। जब उनके बच्चों का इलाज होने लगेगा सरकारी अस्पतालों में तो ये अस्पताल अपने आप सुधर जाएंगे।

कब तक यह हाल रहेगा कि भारत में दुनिया के सबसे बेहतरीन निजी अस्पताल भी यहां हैं और सबसे बदतर सरकारी अस्पताल भी? हमारे निजी अस्पताल अब इतने अच्छे हो गए हैं कि विदेशों से मरीज आते हैं यहां इलाज करवाने। विदेशों में भी सबसे अच्छे डॉक्टर भारत से ही निर्यात होकर जाते हैं।

दूसरा सुधार जो अब लाजमी हो गया है वह यह कि जिस लाइसेंस राज ने चिकित्सा शिक्षा को जकड़ कर रखा है उसको समाप्त करना होगा। मेडिकल कॉलेज इतने थोड़े हैं अपने देश में इस लाइसेंस राज के कारण। यानी सरकार के पास क्षमता नहीं है नए मेडिकल कॉलेज खोलने की, लेकिन निजी निवेशकों को भी इस क्षेत्र में आने नहीं देते हैं वे लोग, जो इस लाइसेंस राज से लाभ उठाते हैं।

जब तक इन चीजों में सुधार नहीं आएगा तब तक मरते रहेंगे हमारे बच्चे सरकारी लापरवाही के कारण। इस बार भी बिहार के 'सुशासन बाबू' मुख्यमंत्री उतनी जल्दी भुला देंगे, जितनी जल्दी भुला सकते हैं कि उनके शासनकाल में बिहार के इतने बच्चे मरे सरकारी लापरवाही के कारण। उम्मीद करते हैं कि इस बार प्रधानमंत्री नहीं भुलाएंगे उन मासूम बच्चों को, जो मुजफ्फरपुर के उस अस्पताल में मरे हैं। इस बार परिवर्तन यह देखने को मिला कि गरीब माता-पिता भी समझ गए हैं कि उनका अधिकार है सरकार से बेहतर सेवाएं मांगना। सो, जिस 'नए भारत' का निर्माण मोदी करने जा रहे हैं, उसमें पुराने भारत की बुरी आदतें नहीं रह सकती हैं।

कैसे कैसे मनोहर दृश्य!

बाखबर

■ सुधीश पचौरी

अंत में वह शुभ दिवस आया, जिस दिवस कलियुग में धर्मयुग का 'लाइव लाइव' अवतरण हुआ।

अधिकतर देवगण जपने लगे : जय श्रीराम! जय श्रीराम! जय श्रीराम!

कैसे कैसे मनोहर दृश्य दिखे कि जीवन धन्य हो गया। कलियुग में कृतयुग का आनंद आ गया!

सबका कल्याण हुआ। इतने दिन बाद रामराज्य आया। 'दैहिक दैविक भौतिक तापा' किसी को नहीं ब्यापा, लेकिन ब्यापा तो मुजफ्फरपुर के बीमार बच्चों को ब्यापा कि वे न कह सके, न सुन सके जय श्रीराम और सीधे स्वर्ग सिधार गए।

जय श्रीराम का जादू ऐसा चला कि सबकी धार्मिक भावनाएं जाग कर संसद में धार्मिक नारे लगाने लगीं।

ओवैसी बोले : जय भीम, जय मीम तकबीर, अल्लाहो अकबर।

एक बोले जय काली, जय हिंद। दूसरे बोले इंकलाब जिंदाबाद।

एक ने कहा भारत माता की जय। वंदे मातरम्, तो दूसरे ने कहा हर हर महादेव!

धर्म आकर संसद में बिराज गया। सभी धर्मभाव से भर कर भद-भद मेजें बजाते रहे।

शाम तक बहसीले लोग बहसों में व्यस्त हो गए कि पंथनिरपेक्ष संसद के नए शपथ समारोह में क्यों गूंजा 'जय श्रीराम'?

कुछ बोले कि इंग्लैंड की संसद में हर बात पर 'जीसस' 'जीसस' होता है, अगर अपने यहां कुछ 'जय श्रीराम' हो गया तो क्या गुनाह? हमारे लिए तो 'अल्लाहो अकबर' भी है 'जय श्रीराम'!

इधर धर्म बरसता रहा, उधर मुजफ्फरपुर के अस्पताल में बच्चे पट-पट कर मरते रहे। खबर चैनलों के रिपोर्टर और एंकर चीखते रहे कि यह क्या हो रहा है, दवाई कहां है, डाक्टर कहां है? कि मुख्यमंत्री क्यों कुछ नहीं कर रहे?

इसी बीच यूपी सरकार ने कहा कि विश्वविद्यालयों और विद्यालयों को स्वच्छ किया जाएगा! अब कहीं भी 'टुकड़े टुकड़े गैंग' टुकड़े टुकड़े नहीं कर पाएगा! न कोई राष्ट्र-विरोधी गतिविधि कर सकेगा। सबको शपथ लेनी होगी कि वे कभी भी किसी भी राष्ट्र-विरोधी गतिविधि में शामिल नहीं होंगे।

> इस बीच कैमरों ने दिखाया कि राहुल देखते रहे अपने मोबाइल को पूरे चौबीस मिनट और जब औपचारिकता में मम्मी सोनिया ने मेज थपथपाई तो राहुल ने हाथ के इशारे से बरजा कि न बजाएं मेज!

लेकिन इतने 'जय श्रीराम' के बावजूद दिमागी बुखार के शिकार बच्चों ने मुजफ्फरपुर के सबसे बड़े अस्पताल में मरना न छोड़ा!

ये दिमागी बुखार क्या होता है और क्यों होता है!

एक एंकर को क्रांति का दौरा पड़ गया और वह नेताओं को कोसने लगा कि नेता खाएं डेढ़ हजार की थाली और बच्चों का पेट रहे खाली! बजाओ ताली! बच्चों को पोषक आहार कब मिलेगा?

संसद में राष्ट्रपति जी का सुदीर्घ भाषण हुआ। पांच साल का सरकार का 'रोड-मैप' दिया कि भारत बनेगा पांच अरब डॉलर की महान अर्थव्यस्था!

सभी देवगण राष्ट्रपति के भाषण को ध्यान से सुनते रहे। कुछ आपस में बातें करते रहे। कुछ इधर उधर देखते रहे! बालाकोट स्ट्राइक का जिक्र जब आया, सबसे अधिक देर तक मेजें बजती रहीं!

इस बीच कैमरों ने दिखाया कि राहुल देखते रहे अपने मोबाइल को पूरे चौबीस मिनट और जब औपचारिकता में मम्मी सोनिया ने मेज थपथपाई तो राहुल ने हाथ के इशारे से बरजा कि न बजाएं मेज!

राहुल-ठोकू एंकरों को मौका मिल गया राहुल को ठोकने का कि यह कैसा ससंदीय शिष्टाचार था कि मम्मी को टोका!

एक चैनल की बहस में एक राहुल भक्त ने राहुल को यह कह कर बचाया कि वे तो अपनी बीमार मां का हाल पूछ रहे थे!

है न कमाल की व्याख्या!

लेकिन ठीक अंतरराष्ट्रीय योग दिवस पर कलियुग इस बार राहुल के ट्वीट में आ बिराजा और जो काम दिव्या स्पंदना जी का हुआ करता था, उसे शायद राहुल ने ही पूरा कर दिया। सेना के कुत्तों के योगाभ्यास के चित्र को ट्वीट कर लिख दिया- 'नया भारत' अर्थात कटाक्ष किया कि यह नया भारत है!

एक भक्त एंकर को लगा कि यह तो 'नए भारत' की तौहीन की जा रही है, इसलिए उसने एक 'प्रो-पैनलिस्ट' से राहुल के इस 'कुत्ता-ट्वीट' का मतलब पूछा, तो उसने जिस अंग्रेजी में इस 'कुत्ता-ट्वीट' को अर्थाया उसे न लिखा और सुना जाए सो ही बेहतर, क्योंकि उसके बाद बहस में ऐसा कुत्ता-कुत्ता हुआ कि एंकर को कुत्तार्थ करने वाले का माइक खामोश करना पड़ा!